Gyanvividha, Vol.-1; Issue-5 (October-December) 2024 : PP-38-40

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

Online ISSN : 3048-4537
Vol.-1; Issue-5 (Oct.-Dec.) 2024
Page No.- 38-40
©2024 Gyanvividha
www.journal.gyanvividha.com

डॉ. गोवर्धन लाल डांगी

पो–बोहेड़ा, त-बडीसादडी,
जि-चित्तौड़गढ़, राजस्थान-312404.

हिंदी साहित्य एवं नामवर सिंह की आलोचना पद्धति

नवीन कहानी कला की समीक्षा प्रगतिवादी हिंदी आलोचना के एक समर्थ हस्ताक्षर के रूप में डॉ. नामवर सिंह का नाम लिया जाता है। उन्होंने आदिकालीन साहित्य से लेकर नए से नए हिंदी कवियों व लेखकों को अपनी आलोचना का विषय बनाया है। वे पृथ्वीराज रासो से लेकर मुक्तिबोध और धूमिल तक की लंबी और विशाल काव्य परंपरा को आत्मसात कर उसकी सम्यक् समीक्षा करते हैं। इनके लेखन का आरंभ अपभ्रंश से होता है किंतु नयी कविता और समकालीन साहित्य पर भी सर्वाधिक सशक्त टिप्पणी करने वालों में वे अग्रणी रहे।

नामवर सिंह ने अपना आलोचकीय जीवन 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' से आरंभ किया था। इसमें अपभ्रंश साहित्य पर विचार करते हुए बीच-बीच में नामवर जी ने टिप्पणियाँ दी हैं, वे विचारपूर्ण एवं सुचिंतित हैं। वे सूक्ष्मदर्शिता और सहृदयता के साथ मार्क्सवादी आलोचना पद्धति का रूप प्रस्तुत करती हैं। इसमें अपभ्रंश साहित्य की कतिपय महत्वपूर्ण रचनाओं का परिचय देते हुए उनके सौंदर्य पक्षों का उद्घाटन किया गया है। उनके अनुसार भावधारा के विषय में अपभ्रंश से हिंदी का जहाँ केवल ऐतिहासिक संबंध है, वहाँ काव्य रूपों और छंदों के क्षेत्र में उस पर अपभ्रंश की गहरी छाप है।

सिद्धों की रचनाओं के विषय में उनका विचार है कि कुल मिलाकर सिद्धों की रचनाओँ में जीवन के प्रति बहुत सकारात्मक दृष्टिकोण है। हेमचंद्र

के प्राकृत व्याकरण में अपभ्रंश के उद्धृत दोहों की नामवर जी ने संदर्भ देते हुए ऐसी मार्मिक व्याख्या की है कि तत्कालीन समाज का नितांत आत्मीय रूप हमारी आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' के पाठशोध में हजारी प्रसाद द्विवेदी का सहयोग करने के साथ-साथ नामवर सिंह ने रासो संबंधी कुछ लेख भी उसी पुस्तक में जोड़ दिए हैं (पृथ्वीराज रासो : भाषा और साहित्य)। यद्यपि ये लेख परिचयात्मक ही हैं फिर भी एकाध स्थलों पर लेखक की सहृदयता, रस-ग्राहिकी और आलोचकीय क्षमता का पता चलता है। इन दो पुस्तकों में डॉ. नामवर सिंह के आलोचक रूप की अपेक्षा उनका शोधकर्ता, इतिहासकार रूप अधिक उभरता है। फिर भी हिंदी साहित्य के इतिहास की एक नवीन दृष्टि, मार्क्सवादी दृष्टि से देखने-समझने की शुरुआत यहाँ से हो जाती है।

'छायावाद' नामक कृति में नामवर जी ने छायावाद की काव्यगत विशेषताओँ को स्पष्ट करते हुए उसमें निहित सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन किया। यह प्रगतिवादी आलोचना के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। 12 अध्यायों में विभक्त इस कृति में विभिन्न अध्यायों के विवेच्य विषयों को सूचित करने के लिए जो शीर्षक दिए गए हैं, उनमें से अधिकांश छायावादी कवियों की काव्य-पंक्तियों के ही टुकड़े हैं। शीर्षकों से ही स्पष्ट है कि विवेचन में छायावादी काव्य वस्तु से सैद्धांतिक निष्कर्ष तक पहुँचा गया है। यहाँ पर गुण से नाम की ओर बढ़ा गया है तथा नामकरण की सार्थकता इस विशिष्ट काव्यधारा की काव्य-संपत्ति के आधार पर निश्चित की गयी है। किसी वाद पर हिंदी में इस वैज्ञानिक और निगमनात्मक ढंग से पहली बार विचार किया गया है। इसे रहस्यवाद, स्वच्छंदतावाद और छायावाद नाम से अभिहित किया गया है। इसमें छायावाद की विभिन्न विशेषताओं, रचनाओं, रचनाकारों का विधिवत विवेचन किया गया है।

छायावाद की अन्यतम कृति 'कामायनी' की प्रतीकात्मकता एवं रूपकत्व पर नामवर सिंह ने विचार किया है। इन्होंने कामायनी के रूपकत्व के सामाजिक आयाम पर विचार करते हुए कहा है कि 'इसमें आधुनिक समस्याओँ पर भी विचार किया गया है'। कामायनी में व्यंजित प्रतीकों को लेकर नामवर सिंह कहते हैं कि "देवसंपन्नता का ध्वंस वस्तुतः हिंदू राजाओं और मुसलमान नवाबों तथा मुगल बादशाहों के विध्वंस का प्रतीक है। हिमसंस्कृति प्राचीन जड़ता तो उषा नवजागरण की प्रतीक है। मनु देव-सभ्यता का प्रतीक है, कुमार प्रजातांत्रिक सभ्यता का। देवासुर संग्राम आत्मवाद एवं बुद्धिवाद के संघर्ष का प्रतीक है। इस प्रकार प्रसाद ने कामायनी में आधुनिक भारतीय सभ्यता के विविध पहलुओं का सजीव चित्रण किया है। यह भारत की आधुनिक सभ्यता का प्रतिनिधि महाकाव्य है।"

नामवर सिंह ने निराला की लंबी कविताओं 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्तिपूजा' का विश्लेषण अत्यंत सहृदय और भाषिक सर्जनात्मकता के स्तर पर किया है। कथा-साहित्य में प्रेमचंद तथा उनके समकालीनों ('प्रेमचंद और भारतीय समाज') के साथ ही साथ उन्होंने नई कविता के तर्ज पर नई कहानी ('कहानी : नई कहानी') के तमाम कथाकारों का भी सहानुभूति एवं संवेदना के धरातल पर विश्लेषण-मूल्यांकन किया है। सिद्धांत निरुपण संबंधी उनकी विशिष्ट प्रतिभा 'कविता के नए प्रतिमान' में दृष्टिगत होती है। इस पुस्तक के प्रथम खंड में उन्होंने प्रतिष्ठित काव्य प्रतिमानों की विस्तृत आलोचना करते हुए उनकी सीमाएँ बतायी हैं, तथा द्वितीय खंड में नई कविता के संदर्भ में काव्य-प्रतिमानों के प्रश्न को नए सिरे से उठाया गया है।

'कविता के नए प्रतिमान' में नामवर जी ने मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता 'अंधेरे में' की समीक्षा कर सबके लिए समीक्षा का द्वार खोल दिया। उनके अनुसार 'अंधेरे में' का मूल कथ्य अस्मिता की खोज है। अस्मिता की अभिव्यक्ति को परम अभिव्यक्ति से जोड़ते हुए नामवर जी ने कवि मुक्तिबोध के लिए अस्मिता की खोज को अभिव्यक्ति की खोज माना है। एक कवि के लिए परम अभिव्यक्ति ही अस्मिता है। मुक्तिबोध ने आत्मसंघर्ष के साथ-साथ बाह्य सामाजिक संघर्ष को भी स्वीकार किया है। आत्म-संघर्ष की परिणति अंततः सामाजिक संघर्ष में होती है। उन्होंने रामविलास शर्मा की 'नई कविता और अस्तित्ववाद' में व्यक्त मान्यताओं को चुनौती देते हुए मुक्तिबोध जैसे कवियों के साहित्यिक मूल्य को पुनर्स्थापित किया। परंपरा संबंधी रामविलास शर्मा की स्थापनाओं ('परंपरा का मूल्यांकन') से टकराने के क्रम में उन्होंने 'दूसरी परंपरा की खोज' का व्यवस्थित प्रयास किया।

नई कविता के संदर्भ में नए काव्य प्रतिमानों का प्रश्न उठाते हुए नामवर सिंह लिखते हैं - "कविता के प्रतिमान को व्यापकता प्रदान करने की दृष्टि से आत्मपरक नई कविता की दुनिया से बाहर निकलकर उन कविताओं को भी विचार की सीमा में ले आना आवश्यक है जिन्हें किसी अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में सामान्यतः 'लंबी कविता' कह दिया जाता है।" कविताओँ के इस आत्मपरक वर्ग के विरुद्ध उन्होंने मुक्तिबोध की लंबी कविताओं का उदाहरण देकर सामाजिक वस्तुपरक काव्य मूल्यों की स्थापना पर ज़ोर दिया। ये कविताएँ अपनी दृष्टि में सामाजिक और वस्तुपरक हैं और आज के ज्वलंत एवं जटिल यथार्थ को अधिक से अधिक समेटने के प्रयास में कविता को व्यापक रूप में नाट्य-विचार प्रदान कर रहे हैं और इस तरह तथाकथित बिंबवादी काव्यभाषा के दायरे को तोड़कर सपाटबयानी आदि अन्य क्षेत्रों में कदम रखने का साहस दिखा रहे हैं।

नामवर सिंह की आलोचकीय ख्याति अपेक्षाकृत काव्य-आलोचना के क्षेत्र में अधिक रही। जिन काव्य-मूल्यों का प्रश्न उन्होंने उठाया, उनमें भावबोध से लेकर काव्यभाषा तक के स्तर तक काव्य-सृजन को एक सापेक्ष इकाई के रूप में देखने का प्रयास है जिसमें रचना के निर्माण में एक विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक परिवेश के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। उन्हें वाचिक परंपरा का मूर्धन्य आलोचक भी माना जाता है। सभा-गोष्ठियों में दिये गए उनके व्याख्यानों को ही पुस्तक के रूप में प्रकाशित करवा दिया गया। 1959 के एक व्याख्यान में उनकी कही यह बात आज भी प्रासंगिक है, "आधुनिक साहित्य जितना जटिल नहीं है, उससे कहीं अधिक उसकी जटिलता का प्रचार है। जिनके ऊपर इस भ्रम को दूर करने की जिम्मेदारी थी, उन्होंने भी इसे बढ़ाने में योग दिया।" यहां वे 'साधारणीकरण' की चर्चा करते हुए कहते हैं, "नए आचार्यों ने इस शब्द को लेकर जाने कितनी शास्त्रीय बातों की उद्धरणी की, और नतीजा? विद्यार्थियों पर उनके आचार्यत्व की प्रतिष्ठा भले हो गई हो, नई कविता की एक भी जटिलता नहीं सुलझी।" नामवर सिंह ने हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन के संबंध में भी अपना प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'साहित्यिक इतिहास क्यों और कैसे?' निबंध में हिंदी साहित्य के इतिहास को फिर से लिखे जाने की आवश्यकता बताई है। 'इतिहास और आलोचना' के अंतर्गत उन्होंने 'व्यापकता और गहराई' जैसे महत्वपूर्ण काव्य-मूल्यों को परस्पर सहयोगी बताने का मौलिक साहस दिखाया जबकि इन दोनों को परस्पर विरोधी गुणों के रूप में स्वीकार किया गया था। देखा जाय तो नामवर सिंह प्रगतिशील आलोचना की ऐसी पद्धति विकसित करते हैं जो रामविलास शर्मा की स्थापनाओं से जूझते हुए उसका विस्तार भी करती है।

•